19 खेलो, प्यार से

उषा मुकुन्दा नी आयंगर

''जानते हो खेल में क्या है जो मुझे सबसे अच्छा लगता है? खेलने का मौका।''

– माइक सिंगलटेरी,

अमेरिका का सितारा फुटबॉल खिलाड़ी और अब कोच।

भीड़ खुश हो चिल्लाई और कुछ ही पलों में, ऊँचे कद का एक चश्माधारी व्यक्ति उमस भरे उस हॉल से बड़ी निराशा के साथ अपना रास्ता बनाते हुए बाहर निकला। भीड़ को ठेलते हुए वह जब हमारी जिज्ञासा भरी निगाहों के आगे से गुजर रहा था, तो मैंने उसे बड़बड़ाते हुए सुना – ''बादशाह नहीं रहा, बादशाह जिन्दाबाद।'' तब मैं 12 बरस की थी और अपने जीवन के पहले टेबल टेनिस मैच के लिए कलकत्ता के वाई.एम.सी.ए. आई हुई थी। वह व्यक्ति कई सालों से बंगाल का टेबल टेनिस चैम्पियन रहा आया कल्याण जयन्त था जो अभी–अभी इ. सोलोमन नाम के एक किशोर के हाथों अपदस्थ हुआ था। उस समय तो मुझे उसकी उस बड़बड़ाहट के निहितार्थ समझ में नहीं आए, लेकिन जैसे–जैसे मैं अपने खेल, अपनी रैंकिंग में आगे बढ़ती गई, वह पल रह–रह कर मेरी यादों में कौंध जाता। पर क्यों? मुझे लगता है कि वह पल कई बातों का प्रतीक था – सफलता और असफलता की क्षणभंगुरता का प्रतीक, हालाँकि हम असफलता को हमेशा इस तरह से नहीं देखते; इस सच्चाई का प्रतीक कि खेलों में सफलता और प्रसिद्धि कुछ इस तरह सिर चढ़कर बोलते और अहंकार पैदा करते हैं कि यह स्वीकारना बहुत मुश्किल होता है कि ये हमेशा नहीं रहने वाले; और अन्त में, इस बात का प्रतीक, कि एक दिन जब प्रतिष्ठा और तारीफ की नियमित रसद खत्म हो जाएगी, तब खेल के साथ बना रहने वाला हमारा रिश्ता कैसा होगा?

शारीरिक गतिविधियों और खेलों में आनन्द

मेरे लिए यह सोच पाना कठिन है कि ऐसा भी कोई छोटा बच्चा होगा जो मौका मिलने पर हवा की तरह नहीं दौड़ पड़ेगा। यह तत्काल अन्दर से उठने वाला उल्लास से भरा शारीरिक मनोरंजन और आनन्द का जज्बा है। लेकिन वही बच्चा जब बड़ा होता है और स्कूल जाने लगता है तो व्यवस्था और छँटाई का दबाव आने लगता है। टीमें बनती हैं, उनके बीच मैच होते हैं, जीतना और हारना ही सब कुछ होने लगता है। पदक, पुरस्कार, प्रसिद्धि अपना सिर उठाने लगते हैं और देखते ही देखते विद्यार्थी दो धड़ों में बँट जाते हैं – वे जो योग्य हैं, और वे जो योग्य नहीं हैं। स्कूल में होने वाली वार्षिक दौड़ों और प्रतियोगिताओं में बस तनाव ही तनाव बना रहता है। इधर बच्चों की दौड़, उधर बड़ों में होड़ कि देखें किसका बच्चा जीतता है अबकी बार। लगता है कि विजेता और पराजित, दोनों के आनन्द के रंगों की आभा अलग–अलग ही बन जाती है। अक्सर स्कूल ऐसी गतिविधियों का आयोजन दिन की पढ़ाई खत्म हो जाने के बाद करते हैं और वह भी सिर्फ उनके लिए जिनका प्रदर्शन इनमें खास तौर पर अच्छा रहता है। मेरे हिसाब से तो खेलों को पाठ्यचर्या में इस तरह से शामिल किया जाना चाहिए कि उनमें सबकी भागीदारी सुनिश्चित हो और सब उसका आनन्द उठा सकें। अध्यापक हों या विद्यार्थी, उनका कौशल स्तर कैसा भी क्यों न हो, सब खेल पाएँ। कोशिश बस यही होनी चाहिए कि प्रत्येक खेल में निहित शारीरिक गतिशीलता, ऊर्जा, मस्ती तथा उससे जुड़ी विशेष दक्षताओं से प्राप्त आनन्द का सम्प्रेषण हो पाए। आपस में जोश से भरपूर खेल खेले जाएँ, जमकर मुकाबला हो, लेकिन द्वेषभाव और जानबूझकर एक–दूसरे के साथ बदतमीजी का लेशमात्र भी इजहार नहीं हो।

''आमोद–प्रमोद, भाईचारे और घोर परिश्रम से लबालब समूचा वातावरण! क्या यह एक असम्भाव्य स्वप्न है? खेलने का हुनर जानना एक खुशगवार प्रतिभा है।''

–आर.डब्ल्यू. एमर्सन (जर्नल्स, 1984)

मुमकिन है कि कुछ बच्चे कुछ खास खेलों के लिए आवश्यक कौशल आसानी से हासिल न कर पाते हों। कभी–कभी यह लचीलापन रखना कि वे अलग–अलग खेल आजमा पाएँ इस बात में उनकी मदद करता है कि वे अपनी पसन्द का खेल चुन पाएँ। शारीरिक तौर पर स्वस्थ रहने के लिए एक उत्तम कार्यक्रम उन्हें अपने शरीर के साथ सामंजस्य बिठाने का एक नया नजरिया देता

है। शरीर स्वस्थ हो तो आप तमाम तरह के खेलों की ओर जा सकते हैं। इन सब विचारों का एक सन्तुलित, नपा–तुला मिश्रण बच्चों पर अच्छा प्रभाव डालता है।

'सेण्टर फॉर लर्निंग', बंगलौर स्कूली जीवन शुरू करने वाले हर नन्हे बच्चे के लिए यही तरीका अपनाता रहा है। नतीजतन, हर बच्चा और युवा शारीरिक रूप से सक्रिय रहता है और खेल के घण्टे की राह खुशी–खुशी तकता है।

प्रतिस्पर्धा की खेल के मैदान में भूमिका

आमतौर पर यह धारणा व्याप्त है कि खेलकूद में प्रतिस्पर्धा हो। यहाँ तक कि प्रतिस्पर्धा से घृणा करने वाले कई लोग भी इस बात को मानते हैं। कई लोगों की यह प्रबल सोच है कि वह कड़ी प्रतियोगिता का सामना करेगा तो बच्चा श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होगा। इसी बात को एक अलग दृष्टि से भी देखने का तरीका है। जब भी हम किसी ऐसे व्यक्ति के साथ खेलते हैं जो उस खेल में हमसे कुछ अधिक है, तो हमारे अन्दर अपने खेल के स्तर को ऊपर उठाकर सामने वाले के श्रेष्ठ स्तर तक पहुँचाने की एक सहज इच्छा उपजती है। टेबल टेनिस, और शायद अन्य रैकेट खेलों के सन्दर्भ में भी, यह कहना सही होगा कि कमतर खिलाड़ी, अपने से बेहतर खिलाड़ी के साथ खेलकर लाभान्वित होता है। लेकिन इस पूरे मसले का अधिक सम्बन्ध उस नामुमकिन–से शॉट तक पहुँचने, विजयी प्रहार को शक्ल देने, और कुछ ठहराव के साथ सबसे बढ़िया रणनीति के बारे में सोचने से है। भले ही अंक हासिल करने के लिए खेलते समय इस मनचाही स्थिति तक पहुँचा जा सकता हो, लेकिन कोच या शिक्षक को इस बात के प्रति सतर्क रहना चाहिए कि कहीं खेलने का एकमात्र कारण यही न बनकर रह जाए। बहुत बार होता है कि कोई विद्यार्थी मुझ से थोड़े व्यंग्यात्मक ढंग से पूछता है, ''आप तो कहती हैं कि आप प्रतियोगिता की हिमायती नहीं हैं, फिर क्यों आप हर पॉइण्ट कमाने के लिए इतना जूझती हैं और जीतने के लिए इतनी मशक्कत करती हैं?'' है कोई जो इस सवाल का जवाब दे दे? मेरे लिए यह कल्पना कर पाना भी नामुमकिन है कि मैं उस टेबल तक अनमने ढंग से जाऊँ या लापरवाही से खेलूँ। टेबल पर तो मैं अपना सर्वश्रेष्ठ ही खेलती हूँ, मेरा पूरा ध्यान बॉल, रैली और मेरे प्रहारों पर होता है। हर पॉइण्ट का अपना महत्व होता है। खेल के साथ मेरे सम्बन्ध के प्रति यह मेरा दायित्व है। लेकिन हर विजय, पराजय मुझ पर परछाई की तरह हावी होने लग जाए तो इसका अर्थ है कि जरूर खेल के साथ मेरे रिश्ते में कुछ खोट है!

''एक खिलाड़ी होने के नाते पराजय मुझे स्वीकार होती है। यूँ तो हर कोई जीतना चाहता है, लेकिन जीतना तो सिर्फ एक ही को है। जीतने में मजा आता है! लेकिन मुझे हारने पर दुख नहीं होता।''

–किपचगे कीनो, केन्या के दो बार के ओलिम्पिक एथलेटिक्स स्वर्ण पदक विजेता।

अभिभावकों, अध्यापकों और कोच की भूमिका

कई अभिभावक खुद को और अपने बच्चों को बहुत सख्त टाइम–टेबल और घोर कष्टों के हवाले कर देते हैं। कोच भी अपने प्रशिक्षुओं की सफलता को लेकर बेहद उन्मादी हो जाते हैं। क्या यह सब अपरिहार्य है, और जब आत्मविस्मृत जोकोविच विम्बलडन में गाँजा चबा रहे होते हैं तो क्या हमें यह सब करने लायक लगता है? मेरे ख्याल से कहीं कुछ गड़बड़ है। किसी विशेष खेल में प्रतिभा की शुरुआत उस खेल के प्रति सच्चे, जुनूनी लगाव से होती है। फिर ज्यों–ज्यों वह युवा–प्रतिभा प्रतिस्पर्धा की कन्दराओं में अन्दर, और अन्दर, धँसती चली जाती है, तब भी क्या खेल के प्रति उसकी वही चाहत और लगाव बने रहते हैं? मुझे याद आता है आंद्रे आगासी का अपनी मानसिक अवस्था के बारे में रहस्योद्घाटन, कि कैसे टेनिस उसे एक दैत्य की तरह दिखाई देने लगा था। क्या कहीं कोई एक बिन्दु है जहाँ प्रेम घृणा में तब्दील होने लगता है?

अपनी बात करूँ तो मेरी शुरुआत अपने खेल के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से हुई थी। रैकेट हाथ में पकड़, गेंद के साथ चुहल करना मेरे लिए बड़ी सहज शारीरिक क्रिया थी। उसमें एक आनन्द था, और कभी कोई ऊब न थी, और न ही कोई अरुचि थी। अलबत्ता शारीरिक थकान जरूर थी। अब जब वह तमाम उठापटक खत्म हो चुकी है, तो मुझे लगता है कि इस खेल के साथ मेरा रिश्ता कुछ और अन्तरंग हुआ है। जब मैं खेलती हूँ तो सुख की एक कमाल की अनुभूति होती है। जब एक बच्चा कोई खेल खेलना शुरू करता है तब क्या यही अनुभूति उसमें नहीं होनी चाहिए? कैसे?

मैं पिछले कई सालों से बच्चों और टेबल टेनिस की दुनिया से अनौपचारिक तौर पर जुड़ी रही हूँ, इसलिए मैं

देखते ही समझ जाती हूँ कि कौन खिलाड़ी हर दम अंक बनाने की जुगत में भिड़ा रहता है और अपनी योग्यता को धाक जमाने के हथियार के तौर पर बरतता है। अपने से कमतर खिलाड़ी की मदद करने में ऐसा बच्चा बोरियत महसूस करता है, और उसकी रुचि बस अपने खेल के साथ बने रहने तक ही सीमित रहती है। कुछ रैलियाँ हुईं नहीं, कि उसमें इच्छा जगने लगती है कि अंकों के आधार पर खेला जाए। और कुछ खिलाड़ी ऐसे होते हैं जो हरदम किसी न किसी को मैच में दो–दो हाथ करने के लिए ललकारते रहते हैं। मैं ऐसे बच्चों की बुराई नहीं कर रही। एक संवेदनशील शिक्षक उन्हें सही कौशल और सही व्यवहार के साथ खेलना सिखा सकता है, और कइयों पर इस प्रशिक्षण का असर भी पड़ता है। लेकिन जो खिलाड़ी बस आज मिल रही वाहवाही तक ही सीमित रहते हैं, मुझे लगता है कि वर्षों बाद उन्हें अपने खेल में जरा भी रुचि नहीं रहेगी। क्योंकि खेल के साथ उनका टिकाऊ रिश्ता नहीं बन पाता।

''अपने खेल से हम प्रकट करते हैं कि हम किस प्रकार के इन्सान हैं।''

–ओविड (द आर्ट ऑफ लव)

खेल का मैदान ऐसे कई अवसर मुहैया करवाता है जब हम यह जान सकते हैं कि खेलते समय एक युवा खिलाड़ी की मानसिक अवस्था क्या होती है। कुछ बच्चे हारने पर हरदम गुस्सैल, हिंसक या हताश से रहते हैं। एक वयस्क उन्हें परिस्थिति और हालात को परिप्रेक्ष्य में देखने की समझ प्रदान करके मदद कर सकते हैं। यहाँ यह समझना जरूरी है कि खेल भावना पर 'भाषण' देने और बच्चे की मनोदशा को समझने के मकसद से उसके साथ किए गए संवाद में अन्तर होता है। संवाद में सच्चे ज्ञान की सम्भावनाएँ कहीं अधिक रहती हैं। ठीक इसी तरह, यदि कोई बच्चा स्कूली जीवन के अन्य पहलुओं में सामान्य ढंग से कार्य नहीं कर पा रहा, लेकिन खेल के मैदान में शानदार प्रदर्शन कर रहा है तो खेल का मैदान हमें एक ऐसा अवसर देता है जहाँ हम उसके साथ एक अलग माहौल में कुछ संवाद कर सकते हैं। जब भी मुझे किसी बच्चे से बातचीत करने में दिक्कत आती थी, टेबल टेनिस का कमरा उसके साथ सम्पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने में बहुत मददगार होता था!

कोचिंग पर मेरे कुछ विचार

मैंने एक से अधिक स्कूलों में बच्चों को कोचिंग दी है, और कोचिंग के दौरान मेरा पूरा ध्यान इस बात पर रहता है कि वे खेल की बारीकियों और जटिलताओं को समझ पाएँ तथा खेल की खूबसूरती की एक झलक पा सकें। इसी के साथ–साथ मैं उन्हें खेल की बुनियादी बातें समझाने की भी कोशिश करती हूँ, और शायद यह भी सिखाती हूँ कि किस तरह वे अपने पूरे शरीर की भूमिका पर ध्यान देते हुए अपने कौशल बढ़ा सकते हैं, अपने प्रतिस्पर्धी और गेंद की गति पर नजर रख सकते हैं। मुझे आशा रहती है कि जल्दी ही वे खेल के साथ अपने शरीर और मन के रिश्ते को महसूस कर पाएँगे और खेलने में उन्हें निर्मल आनन्द की अनुभूति होगी! हो सकता है कि सालों के बीतने के साथ मैं वे सब साहसिक और विस्मयकारी स्ट्रोक्स न लगा पाऊँ जो अब तक मैं लगा पाती थी, लेकिन तब भी अपनी कल्पना में तो मैं वे सब जादुई स्ट्रोक्स लगा ही सकती हूँ और यही मेरा लक्ष्य है। वास्तविक स्ट्रोक्स और उनकी शुद्धता में चाहे कितनी भी कमी आ जाए लेकिन खेल के प्रति उत्साह तो अब भी वैसा का वैसा ही है! और इस आनन्द की महक और स्वाद मैं हर उस बच्चे तक पहुँचाना चाहती हूँ जो मेरे साथ खेलता है। मुझे अच्छे से याद है कि टेबल टेनिस से मेरा परिचय प्रयोग भरा, अटूट, और बेहद फुरसती रहा। अपने पारिवारिक क्लब के किसी कोने में पड़े एक टेबल को देखा और मैंने अपने हमउम्र टेनिस बॉल बॉय निरुवा के साथ खेलना शुरू कर दिया। मैं घण्टों उसके साथ खेलती, पूरी सन्तुष्टि के साथ। स्कूली व्यवस्था में तो खैर इस तरह का कोई विकल्प नहीं होता, लेकिन फिर भी केवल निर्मल आनन्द के लिए खेलना क्या होता है, इसकी जरा सी भी झलक क्या खेलने वाले हर बच्चे तक पहुँचाई जा सकती है? उनकी 'प्रतिभा' का स्तर चाहे जो हो, क्या हर बच्चा खेलों के प्रति इस प्रकार की

भावना महसूस कर सकता है? स्कूलों में खेले जाने वाले खेल क्या आला दर्जे के, आनन्ददायी और समावेशी नहीं हो सकते? जो स्कूल और शिक्षाविद अपने तईं एकदम स्पष्ट हैं कि वे इन तत्वों को शामिल करना चाहते हैं, उनके लिए शुभ समाचार है कि यह सब सम्भव है!

Reading suggestions

1. "Playfair : Everybody's guide to noncompetitive play " by Matt Weinstein and Joel Goodman. Impact Publishers. California. 1980.
2. "Co-Op Games Manual" by Jim Deacove. Family Pastimes. Canada. 1974.
3. " Co-Op Sports Manual" Ibid.
4. "Let's play" by Sharad Jain. Journal of the Krishnamurti Schools. No. 14. January 2010. Page 32.

उषा मुकुन्दा *'सेण्टर फॉर लर्निंग, बंगलौर की संस्थापक सदस्य हैं। यहाँ उन्होंने 'ओपन लाइब्रेरी' शुरु की। वे 12 बरस की उम्र से टेबल टेनिस खेल रही हैं। पहले 7 साल तो उन्होंने राष्ट्रीय चैम्पियनशिप में बंगाल का प्रतिनिधित्व किया, और फिर महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु का। वे भारत की तरफ से एशियन चैम्पियनशिप में भी खेली हैं। पिछले कई सालों से वे अपने प्रशिक्षुओं में इस खेल के प्रति एक लगन पैदा करने के विभिन्न तरीके खोजती रही हैं। उनका ई–मेल है – usha.mukunda@gmail.com*